हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों की अगली कड़ी प्रेमचन्द

सर्वेश कुमार*

रामविलास शर्मा के अनुसार 'प्रेमचन्द की रचनाएं भारतेन्दु हरिश्चन्द, बालकृष्णभट्ट और राधाकृष्णदास के कथा साहित्य का अगला और स्वाभाविक कदम थीं। ग्रामीण परिवेश में जन्मे प्रेमचन्द जब शहर में रहने लगे तो उन्हें उपन्यास और कहानियाँ पढ़ने का चस्का लग गया और उन्होंने तिलिस्म होशरुबा के अतिरिक्त रतननाथ सरशार, मिरजा रुसवा और मौलाना शरर के उपन्यासो को पढ़ डाला था लेकिन अपनी लेखनी में प्रेमचन्द ने तिलिस्म होशरुबा जिसे उर्दू का चन्द्रकान्ता व भूतनाथ की भांति जासूसी व तिलस्म का उपन्यास कहा जाता है, का रास्ता नहीं अपनाया क्योंकि प्रेमचन्द अपनी लेखनी के माध्यम से जनता का हित करने के अभिलाषी थे। उनकी इसी अभिलाषा ने तिलिस्माती किस्से कहानियों की परम्परा को नजर अंदाजकर 'परीक्षा गुरु', सौ अजान एक सुजान, निस्सहाय हिन्दू आदि की परम्परा को आगे बढ़ाया। जबकि उस समय चन्द्रकान्ता और तिलिस्म होशरुबा के पढ़ने वाले लाखों में थे और भारतेन्दु युग के सामाजिक उपन्यासों को पढ़ने वाले बहुत थोड़ी संख्या में थे। कहने का तात्पर्य था है कि जिस समय प्रेमचन्द ने कथा साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण किया उस समय उनके उपन्यासों को मूल जमीन देने वाले भारतेन्दु युगीन उपन्यास बहुत उपेक्षणीय थे किन्तु ये अपेक्षाकृत बहुत कम महत्व वाले उपन्यास ही उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द की नींव थे। अतः ऐसे कम चर्चित किन्तु उपन्यास सम्राट 'प्रेमचन्द' को आधार प्रदान करने वाले भारतेन्दु युगीन सामाजिक उपन्यासों को आज विस्मरण के गर्भ से बाहर निकालने की आवश्यकता है।

भारतेन्दु युग के समस्त साहित्यिक विधाओं में राष्ट्रीय जागरण के साथ–साथ सामाजिक जागरण के स्वर सघनता से सुनाई पड़ते हैं। हालांकि हितोपदेश', 'पंचतंत्र', 'वैताल पंचविशति', 'शुक सपृति आदि प्राचीन भारतीय कथा परम्पराओं का प्रारम्भिक उपन्यासों पर काफी प्रभाव दिखाई पड़ता है जिसमें प्राचीन कथा–प्रणाली के माध्यम से नवीन सामाजिक समस्याओं को व्यक्त किया गया। हिन्दी के प्रारम्भिक सामाजिक उपन्यासों में भाग्यवती, परीक्षा गुरु, नूतन ब्रह्मचारी, सौ अजान एक सुजान (बालकृष्ण भट्ट), निस्सहाय हिन्दू (राधाकृष्ण दास), विधवा विपत्ति (राधाचरण गोस्वामी), श्यामा स्वप्न (ठाकुर जगमोहन सिंह), जया (दुर्गा प्रसाद खत्री), लवंगलता (किशोरीलाल गोस्वामी), कुसुम कुमारी, लीलावती वा आदर्श सती, पुनर्जन्म वा सौतियांडाह, अंगूठी का नगीना (किशोरी लाल गोस्वामी), सास पतोहू, बड़ा भाई, नए बाबू, (गोपाल राम गहमरी), धूर्त रसिक लाल, स्वतंत्र रमा परतंत्र लक्ष्मी (मेहता लज्जा राम), अधखिला फूल, ठेठ हिन्दी का ठाठ (हरिऔध) सौन्दर्योपासक, राधाकान्त (ब्रजनंदन सहाय), रामलाल (मन्नन द्विवेदी), वनजीवन वा प्रेम लहरी (राधिकारमण प्रसाद सिंह) के नाम अग्रगण्य है जिसमें मुख्य रूप से नारी समस्या को उठाया गया है किन्तु इसके अतिरिक्त शराबखोरी, चाटुकारिता व उसके दुष्परिणाम, सदाचार, हिन्दुओं की असहायता, गो प्रेम आदि विषय भी इन उपन्यासों में आए हैं– इन्हीं विषयों को लेकर प्रेमचन्द ने उसे यथार्थ के धरातल पर लाकर उपन्यास विधा को भव्य समृद्धि दी।

प्रेमचन्द ने सबसे पहले उर्दू में लिखना प्रारम्भ किया। इसका कारण उस समय उर्दू भाषा की सम्पन्नता और उस भाषा का आम लोगों में प्रचलन ही था। वैसे भी भारत में उपन्यास की शुरूआत बग्ला भाषा के पहले उर्दू–फारसी भाषा में ही मिलते हैं। प्रारम्भिक उर्दू के उपन्यास 'उमराव जान 'अदा' (मिर्जा हादी' रूस्वा' साहब) हो या तिलस्मी होशुरबा हो इनकी प्रसिद्धी प्रेमचन्द जी को पहले से ही मालूम थी। साथ ही उर्दू जुबान हिन्दी भाषा के अपेक्षा अधिक प्रचलित थी, इसलिए प्रेमचन्द जी को उपन्यास लिखने के लिए भाषा के चुनाव करने में ये प्रारम्भिक उर्दू उपन्यास अधिक योग निभाते है।

* शोध छात्र, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,वाराणसी

हिन्दी की ओर झुकना वह भी गद्य की तरफ उसमें भी कहानी और उपन्यास की तरफ प्रेमचन्द की बहुजन हिताय की चिन्ता थी। हिन्दी भाषा का प्रचार–प्रसार अब तक धीरे–धीरे हो गया था, और गद्य के लिए हिन्दी भाषा प्रारम्भिक उपन्यासों के चलते अधिक सरल और सम्पन्न बनती जा रही थी। इस सन्दर्भ में का. हि. वि. वि. की पत्रिका प्रज्ञा के प्रेमचन्द स्मृति अंक–27 के भूमिका से कुछ पंक्तियां उद्धरणीय है–

> ''प्रेमचन्द की विद्या–यात्रा उर्दू भाषा के माध्यम से शुरू हुई थी। कालान्तर में उर्दू को छोड़कर हिन्दी को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम उन्होंने शायद इसलिए बनाया कि हिन्दी द्वारा अपेक्षाकृत बड़े वर्ग की सेवा की जा सकती है। बहुजन की हित–चिन्ता ने ही सम्भवतः उर्दू के प्रेमचन्द को हिन्दी से जोड़ा था। उक्त प्रस्थान का परिणाम यह हुआ कि हिन्दी की समृद्धि का एक पुष्ट आधार तैयार हो गया।''[1]

प्रेमचन्द के साहित्य पर कई दृष्टियों से कई पीढ़ियों द्वारा विचार होता आ रहा है। कुछ लोगों की दृष्टि में वे आदर्शवादी कथाकार थे, कुछ की दृष्टि में यथार्थवादी। किसी को प्रेमचन्द पर गांधी–विचार दर्शन का प्रभाव दिखाई देता है, किसी को मार्क्स विचार–दर्शन का। मगर प्रेमचन्द को स्वयं वाद विवाद से बहुत परहेज था। कुछेक अवसरों पर ही विवश होकर वे विचार युद्ध में योद्धा के रूप में उतरे थे। उनकी धारणा बहुत साफ थी, जिसे समय–समय पर अपनी लिखावटों और भाषाओं में उन्होंने प्रकट किया था। मेरा मानना है कि प्रेमचन्द आदर्शवादी भले ही हो परन्तु उनके साहित्य की जमीन यथार्थवाद से ही शुरू होकर आदर्शवाद में परिणत होती है। इसके लिए प्रेमचन्द जी के किसी भी उपन्यास चाहे 'गबन' हो, सेवासदन, कर्मभूमि, प्रतिज्ञा, गोदान, कायाकल्प हो सबमें एक यथार्थ कथा शुरू होकर आदर्शवाद में परिणति हो जाती है। यही यथार्थ की जमीन हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों में बेशुमार उपलब्ध है। और इसी यथार्थ के लिए प्रेमचन्द जी की धारणा एकदम स्पष्ट थी–

> ''उनकी धारणा के मुताबिक जीवन के यथार्थ से आँख मूँदकर साहित्य रचने वाला साहित्य के नाम पर तमाशा खड़ा करता है और चूंकि साहित्य का आधुनिक पाठक जीवन दृष्टि की अपेक्षा रखता है, इसलिए कोरे मनोरंजन तथा कल्पना के आधार पर तमाशा से उसका समाधान नहीं हो सकता। साहित्य का उद्देश्य मनोरंजन से बहुत ऊँचा है।''[2]

साहित्य का मूल उत्स जीवन है और उसका अंतिम तथा एकमात्र प्रयोजन भी जीवन ही है। उपन्यास जीवन का यथार्थ रूप ही होता है। उपन्यास अर्थ ही है जीवन की सच्चाईयों को यथार्थ रूप में सामने रख देना। यथार्थ जीवन की कठिनाईयों और संघर्षो से छनकर आनेवाला अव्याज मनोहर मानवीय रस ही उसका प्रधान आकर्षण है। प्रेमचन्द अपने उपन्यासों में यथार्थ को लेकर ही आगे की दिशा तय की है; बाद में वे चाहे आदर्श की ओर मुड़े या किसी निष्कर्ष की ओर परन्तु शुरूआत के लिए उनको हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों के मूल स्वर यथार्थवादी स्वर से ही गति प्रदान होती है। इसके लिए प्रेमचन्द स्वयं अपने निबंध में ''साहित्य में आदर्श और यथार्थ'' में स्वीकार भी करते हैं कि ''इस प्रकार साहित्य का जीवन से सीधा सम्बंध है। अपने सम्बंध को अक्षुण्ण, चिरन्तन एवं प्रभावी बनाने के लिए साहित्य अभिव्यक्ति को जो उद्देश्य एवं ढ़ंग अपनाता है वहीं से साहित्य में आदर्श एवं यथार्थ के प्रश्नों का समारम्भ होता है।''[3]

प्रेमचन्द जी के साहित्य पर पैनी नजर डालें तो हम पाते हैं कि प्रायः वे किसी आदर्शवाद को स्थापित करते हैं। अपने लगभग सभी उपन्यासों में यथा सेवासदन, प्रतिज्ञा, निर्मला आदि उपन्यास में महिला पात्र प्रायः परिस्थिति या किसी कारणवश तवायफ़ जैसी जिंदगी बसर करती है और अन्त को उसका उद्धार होता है। स्त्री की यह तवायफ़ और वेश्या की जिन्दगी हमें प्रारम्भिक उपन्यासों में जैसे 'उमराव जान' 'अदा' (मिर्ज़ाहादी रूस्वा) चन्द्रावली (किशोरीलाल गोस्वामी) कृत उपन्यासों में मिल जाती

हैं। उमराव जान 'अदा' में उमराव जान (अमीरन) अपने परिस्थितिवश तवायफ की जिंदगी जीती है तो सेवासदन में सुमन को विवश और मजबूर होकर वेश्या की जिंदगी बितानी पड़ती है। प्रारम्भिक उपन्यासों और प्रेमचन्दकृत उपन्यासों में इनके उल्लेख को हम देख सकते हैं–

> ''इसी कमरे के बराबर एक कमरा था, उसमें एक तवायफ रहती थी। रहन–सहन का तरीका और रंडियों से बिल्कुल अलहदा था। न कभी किसी ने कमरे पर रास्ते की तरफ बैठे देखा, न किसी का आना–जाना था। दरवजों में दिन–रात ताले पड़े रहते थे। चौक की तरफ का निकास बिल्कुल बंद रहता था। गली की तरफ एक दरवाजा था, उसी से नौकर–चाकर आते–जाते थे। अगर कभी–कभी रात को गाने की आवाज़ न आया करती, तो यह भी न मालूम होता कि इस कमरे में कोई रहता है। जिस कमरे में हम लोग बैठते थे, इसमें एक छोटी–सी खिड़की भी लगी थी, मगर उसमें कूड़ा पड़ा हुआ था।''[4]
>
> ''जाकर जो देखा, मालूम हुआ उमराव जान ''अदा'' तशरीफ रखती है। उमराव जान (देखते ही) : अल्लाह, मिर्जासाहव आप तो हमें भूल ही गए।''[5]
>
> ''उस दिन से उमराव मेरा नाम हो गया। थोड़े दिनों बाद जब मैं रंडियों की गिनती में आई तो लोग 'उमराव जान' कहने लगे। खानम साहब मरते दम तक 'उमराव' कहा करती थीं। बुआ हुसैनी 'उमराओं साहब' कहती थी।''[6]

हिन्दी के ही एक और प्रारम्भिक उपन्यास किशोरीलाल गोस्वामीकृत चन्द्रावली (1908 ई.) में वेश्यावृति जीवन यापन करने वाली स्त्रियों के जगह के जो नाम भी दिए गए हैं वही नाम प्रेमचनद जी के यहाँ भी उपलब्ध हैं। यह नाम दो अलग–अलग समय के उपन्यासों में बनारस की एक गली 'दालमण्डी' के नाम से स्थापित है–हालाँकि आज के दौर में उसकी स्थिति अब कुछ और ही बयां करती है–

> ''रंडी की जात को लज्जा और संकोच कहाँ। सो ज्योही चुन्नी को मरे ससुर जी ने निकाला कि वह कंबख्त रंडीयों के मेल में जा बैठी और अपना शरीर बेचने और अपनी लड़की को गाने बजाने की तालीम दिलवाने लगी। कुछ दिनों पीछे उसने दाल की मंडी में अपना खास घर बनवाया और अपनी लड़की के साथ उसी में रहने लगी।''[7]

प्रेमचन्द जी के उपन्यास 'सेवासदन में भी तवायफ़ की जिंदगी बसर कर रही सुमन के लिए भी उपन्यास का एक पात्र अबुलवफा और शर्मा जी को बताता है–

> ''इस आग्रह से विवश होकर शर्मा जी फिटिन पर बैठे
> अबुलवफा– वह खबर सुनाएं कि रूह फड़क उठे।
> शर्मा जी– फरमाइए तो
> अबुलवफा– आपकी महराजिन 'समुनबाई हो गई।''[8]

सुमनबाई परिस्थिति से नहीं बल्कि विवश होकर इस नरकभरी जिंदगी को ढो रही है। वह उससे निकलना चाहती है। उस दालमण्डी वाले स्थान से बाहर निकलकर सामान्य जीवन निर्वाह करना चाहती है। यहीं पर प्रेमचन्द यथार्थ को लेकर एक निष्कर्ष रूप में एक आदर्शवाद को स्थापित करना चाहते हैं जो कि हर प्रारम्भिक उपन्यास में चारों तरफ बिखरा पड़ा मिल जाता है। उपन्यास 'सेवासदन' का एक पात्र विट्ठलदास समुनबाई को एक अच्छी जिंदगी बसर के लिए कुछ सुझाव देना चाहते है–

> ''अगर ईश्वर तुम्हें सुबुद्धि दें तो सामान्य रीति से जीवन निर्वाह करने के लिए तुम्हें दालमण्डी में बैठने की जरूरत नहीं है। तुम्हारे जीवन निर्वाह का केवल यही एक उपाय नहीं हैं। ऐसे कितने धन्धे है जो अपने घर में बैठी हुई कर सकती हों।''[9]

हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यास से प्रेमचन्द जी ने पूरा–पूरा सहारा लिया है जो चीज वहाँ कथन, संकेत रूप में हैं वही चीजें प्रेमचन्द जी के यहाँ आकर पूर्णतया दीर्घाकार हो जाती है; इनमें गाय के प्रति स्नेह भाव और उसकी पूजा करना, आदर्शवाद स्थापित करना वेश्या और तवायफ़ की जिंदगी से परिचित करना, किसानों की बदहाली को यथार्थ रूप में दर्शाना, देश प्रेम, गोहत्या का विरोध और उसके पूजा और उपयोग पर बल देना, स्त्री शिक्षा, बेमेल विवाह, बाल विवाह, आभूषण और जेबरों से लगाव रखना आदि स्त्रियों के मनोभाव को प्रेमचनद जी ने हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यास से उठाकर अपने उपन्यासों में मुखर रूप से अत्याधिक पृष्ठों पर स्थान दिया है। हिन्दी के एक प्रारम्भिक उपन्यास 'निस्सहाय हिन्दू' (1890 ई.) (राधाकृष्णदास कृत) पूरा का पूरा उपन्यास गोवध समस्या पर ही केन्द्रित है। क्या ऐसा नहीं लगता है इसकी दूसरी कड़ी के रूप में गोदान को प्रेमचन्द जी ने उपस्थित किया है। यहाँ हम निस्सहाय हिन्दू में गोकुशी और उसके बचाव का जिक्र देख सकते है और प्रेमचन्द गोदान में उसे पूजनीया के रूप में स्थापित करते हैं।

> ''एक मुसलमान सभासद–बाबू मदन मोहन साहब ने जो कुछ फर्माया दरहक़ीक़त सच है। इसमें कुछ शक नहीं कि मुसलमानों ने बेचारे हिन्दुओं पर बड़ा–बड़ा जुल्म किया है, जिसे मैं सरासर बेजा समझता हूँ, और आजकल भी कुछ फसाद उठाया है। मैं सच्चे जी से हिन्दुओं का शरीक हूँ, क्योंकि इस वक्त सरासर हिन्दुओं पर जुल्म हो रहा है। बावजूद कि गोकुशी कुरान शरीफ़ में मना है। ताहम बहुत से बदमाश मुसलमानें ने हिन्दुओं का जी दुखाने के लिए इसे जारी रखा है। मैं कसम खाकर कहता हूँ कि मैं इस बारे में आप के साथ हूँ।''[10]

उपन्यास के उसी पृष्ठ पर गाय के पूजनीया होने की बात कही गयी है और उसके बचाने के लिए गवर्नमेंट से गुहार भी लगाया गया है। ''मुझे बड़ा ही आश्चर्य है कि गर्वनमेंट ऐसी बातों पर क्यों नहीं ध्यान देती ? गौओं का मारा जाना केवल धर्म विरुद्ध ही नहीं वरन् इस से कृषि–कर्म, आरोग्य आदि का भी बड़ा उपकार होता है, परन्तु इतने पर भी गर्वनमेंट ध्यान नहीं देती। हमारे हिन्दू भाइयों के लिए यह बड़ी ही लज्जा की बात है कि उन लोगों के सामने ही उनकी परम पूजनीया माँ की यह दशा हो। धिक्कार है कि बहुत से मुसलमान इस अन्याय से चिढ़े और हिन्दुओं का इस पर भी ध्यान न हो।''[11]

प्रारम्भिक उपन्यासों में तो गाय की रक्षा के लिए पुरजोर आह्वान किया गया है, वहीं प्रेमचन्द 'गोदान' में उसको परिवार की सदस्यस्वरूप और जीवनोपयोगी बताया है–

> ''हर एक गृहस्थ की भांति होरी के मन में भी गऊ की लालसा चिरकाल से संचित चली आती थी। यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध्य थी। बैंक सूद से चैन करने या जमीन खरीदने या महल बनवाने की विशाल आकांक्षाए उसके नन्हें से हृदय में कैसे समाता।''[12]

होरी की यह साध्य जिस वक्त पूरी होती है। उसे देख उसके घर और उसके पत्नी, बच्चे फूले नहीं समाते हैं–

> ''धनिया और होरी दोनो गाय बांधने का प्रबंध करने लगे। होरी बोला चलो जल्दी से नाद गाँड़ दें। धनिया के मुख पर जवानी चमक उठी, नहीं पहले आटा और गुड़घोलकर रख दें, बेचारी धूप में चली होगी प्यासी होगी। तुम जाकर नाद गाड़ो। मैं घोलती हूँ। कहीं एक घण्टी पड़ी थी उसे ढूढ़ ले उसके गले में बांधेगें। सोना कहा गयी ? सहुआइन की दुकान से थोड़ा सा काला डोरा मँगवा लो। गाय को नजर बहुत लगती है। आज मेरे मनकी बड़ी भारी लालसा पूरी हो गयी।''[13]

प्रेमचन्दपूर्व उपन्यासों में आभूषण प्रियता भी देखने को मिलती है। जिसे प्रेमचन्द जी ने गबन उपन्यास का मुख्य कथा विषय बनाया है। ऐसा लगता है कि जैसे प्रेमचन्द प्रारम्भिक उपन्यास की

पुरजोर प्रशंसा अपने शब्दों में उन प्रसंगों को लिखकर करते है। आभूषण के प्रति प्रेम गबन उपन्यास ''चढ़ावा ज्योही पहुचा, घर में हलचल मच गयी। स्त्री–पुरुष, बूढ़े–जवान, सब चढ़ाव देखने के लिए उत्सुक हो उठे। ज्योंहि किश्तियाँ मण्डप में पहुची, लोग सब काम छोड़कर देखने दौड़े। आपस में धक्कम–धक्का होने लगा। मानकी प्यास से बेहाल हो रही थी, कंठ सूखा जाता था; चढ़ाव आते ही प्यास भाग गयी। दीनदयाल मारे भूख–प्यास के निर्जिव से पड़े थे। यह समाचार सुनते ही सचेत होकर दौड़े। मानकी एक–एक चीज को निकाल–निकालकर देखने लगी। वहाँ सभी इस कला के विशेषज्ञ थे। मर्दों ने गहने बनवाये थे, औरतों ने पहने थे, सभी आलोचना करने लगे; चूहेदंती कितनी सुन्दर है, कोई दस तोले की होगी। वाह; साढ़े बारह तोले से रत्ती भर भी कम निकल जाय, तो कुछ हार जाऊ ! यह शेरदहाँ तो देखो, क्या हाथ की सफाई है ! कंगन तो देखो, बिल्कुल पक्की जुड़ाई है। चीज तो यह गुलबंद है, कितने खूबसूरत फूल हैं।''[14]

आभूषण के प्रति लगाव और उत्सुकता उपन्यास की नायिका जालपा पर क्या बीतती है। इस मार्मिक दृश्य को उपन्यास के उसी पृष्ठ पर कुछ इस तरह मिल जाता है–

> ''इस गोलाकार जमघट के पीछे अंधेरे में आशा और आकांक्षा की मूर्ति–सी जालपा भी खड़ी थी। और सब गहनों के नाम में आते थे; चंद्रहार का नाम न आता था। उसकी छाती धक–धक कर रही थी। चन्द्रहार नहीं है क्या ? शायद सबसे नीचे हो। इस तरह मन को समझाती रही, मानों उसे मूर्च्छा आ जायेगी। वह लालसा जो आज तक सात वर्ष हुए उसके ह्रदय में अंकुरित थी, जो इस समय पुष्प और पल्लव से लदी खड़ी थी, उस पर वज्रपात हो गया।''[15]

डॉ. पुष्पपाल सिंह इस आभूषण प्रियता को सीधे–सीधे प्रेमचन्दजी को हिन्दी के एक प्रारम्भिक उपन्यास ''देवरानी–जेठानी की कहानी' (1870 ई.) से लिया गया है, ऐसा मानते हैं और देवरानी जेठानी की कहानी' के प्रथम संस्करण की भूमिका प्रस्ताविका में साफ–साफ लिखते हैं–

> ''देवरानी जेठानी' उपन्यास अनेक सामाजिक कुरीतियों, वाह्याड़म्बरों, धार्मिक अन्धविश्वास आदि पर भी करारी चोट करता है। आभूषण प्रियता जो बाद में 'गबन' उपन्यास का भी विषय है। विवाह में फिजूल खर्जी, स्याने–भगतों की झाड़ा–फूंकी आदि भी यहाँ खूब खबर ली गयी है। मोहन के खो जाने पर लाला सर्वसुख द्वारा सब लड़की–बालों (बाल–बच्चों) के कड़े–बाली उतरवाने को कह दिया जाता है। इसी प्रकार विवाह की फिजूलखर्ची पर उनका यह कथन द्रष्टव्य है। मनुष्य को चाहिए कि जितनी चादर देखे उतने पाँव पसारे। मुझे यह बात अच्छी नहीं लगती। जैसे और हमारे बनिये हाट–हवेली गिर्वि रखके वा दुकान में से हजार दो हजार रूपये बड़ी कठिनाई से पैदा किये हैं। विवाह में लगाकर बिगड़ जाते है।''[16]

प्रेमचन्द जी के सम्पूर्ण कथा साहित्य पर नजर डाली जाय तो उनमें सर्वत्र यथार्थवाद से शुरू होकर आदर्शवाद की ओर गमन की प्रक्रिया दिखायी पड़ती है। यह यथार्थ और आदर्श हमें हिन्दी के आरम्भिक उपन्यासो में भरपूर मात्रा में मिलते है। इतना ही नहीं प्रेमचनद जिस स्त्री को बेपढ़ी–लिखी समझते हैं और उसे शिक्षित करने के लिए कोई न कोई मुहिम छेड़ते और निष्कर्ष निकालते है, उन सब बातों को हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासो में मुख्य विषय ही माना गया है। स्त्री शिक्षा के लिए प्रारम्भिक उपन्यास की शुरूआत ही जैसी की गयी थी। किसानों की बदहाली केवल गोदान का विषय नहीं है बल्कि प्रारम्भिक उपन्यास की ही देन है। क्रांतिकारी भूमिका केवल कर्मभूमि में ही स्त्री नहीं निभाती है। बल्कि निस्सहाय हिन्दू से शुरू करती है और आज तक अपने हक की मांग के लिए किसी न किसी रूप में स्त्री विमर्श सक्रिय रूप से क्रियाशील है। यह सब उन्हीं हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों की देन है। इतना तो हम कह ही सकते है कि प्रेमचन्द ही के लिए, नहीं बल्कि प्रेमचन्द युग और प्रेमचन्दोत्तर युग

के उपन्यासकारों के द्वारा लिखी जाने वाली किसी भी समस्या का आधार बिन्दु जैसे, स्त्री शिक्षा, बेरोजगारी, कुरीतियों के खिलाफ, सामंती व्यवस्था के खिलाफ, मजदूरी कम मिलने, छुआछूत पर करारी चोट, या आज के युवावर्ग को चकाचौध में भटकते और मानसिक तनावों से जूझते पात्रों के लिए हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यास ही महत्वपूर्ण दिशा दिखाकर जैसे लुप्तप्राय हो गये हैं। परन्तु उनकी उपयोगिता जरूरत और महत्ता पाठक वर्ग अच्छी प्रकार से समझता है और यह महत्ता हिन्दी के पाठकों और उपन्यास जिज्ञासु के लिए चिरकाल तक स्थायी रूप से बनी रहेगी। प्रेमचन्द को जब भी पाठक वर्ग पढ़ना चाहेगा तो उससे पहले प्रारंभिक उपन्यासों को पढ़ना और उनके अन्दर समाहित सामाजिक तत्वों को जाने बगैर प्रेमचन्द को अधूरा महसूस करेगा, शायद इस बात से हिन्दी के प्रारंभिक उपन्यासों की महत्ता और भी बढ़ जाती है।

संदर्भ सूची

[1] प्रज्ञा (प्रेमचन्द स्मृति अंक), अंक–27 (भाग–2) एवं 28 (भाग–1), संयुक्तांक वर्ष 1982, पृ0

[2] वही

[3] सवा सौ श्रेष्ठ निबंध : तिलक राज शर्मा, प्र. आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1974, पृ0 22।

[4] उमराव जान 'अदा' : मिर्जा हादी रूस्बा', राजकमल प्रकाशन, पहली आवृति : 2003, दूसरा संस्करण–2000, पृ0 5

[5] वही, पृ0 61

[6] उमराव जान 'अदा' : मिर्जा हादी रूस्बा', राजकमल प्रकाशन, पहली आवृति : 2003, दूसरा संस्करण–2000, पृ0 191

[7] सेवासदन : प्रेमचन्द, अध्याय–16, विश्वबुक प्रकाशन, पृ0 61

[8] चन्द्रावल : किशोरीलाल गोस्वामी, बनारस कल्पतरू प्रेस में मुद्रित, सन–1908 ईसवी, पृ0 12, 13

[9] सेवासदन : प्रेमचन्द, अध्याय–15, विश्वबुक प्रकाशन, पृ0 67

[10] निस्सहाय हिन्दू : श्रीराधाकृष्णदास, ग्रंथलोक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–2009, पृ0 31

[11] वही

[12] गोदान : प्रेमचन्द, वैभव लक्ष्मी प्रकाशन, सं. 2009, पृ0 2

[13] गोदान : प्रेमचन्द, सुमित प्रकाशन, सं. 2010, पृ0 31, 32

[14] गबन : प्रेमचन्द, विश्वभारती प्रकाशन, संवत–2005, पृ0 6

[15] वही

[16] देवरानी जेठानी की कहानी : पं. गौरीदत्त, रेमाधव प्रकाशन, पृ0 14